Sanskritik aur Samajik Anusandhan
www.shodhjournal.com
ISSN: 2582-5852
Received: 20-04-2023, Accepted: 05-05-2023, Published: 22-05-2023
Volume 4, Issue 1, 2023, Page No. 21-22

लोक मंगल की कसौटी पर काव्य का मूल्यांकन

डॉ. अजय कुमार श्रीवास्तव
एसोसिएट प्रोफेसर (हिंदी) एवं डीन, राजकीय शिक्षा कॉलेज, चंडीगढ़, पंजाब, भारत

सारांश
साहित्य शब्द अपने आप में में ही हित का भाव उत्पन्न करने के लिए प्रयुक्त होता है। यह हित मनुष्य की मनोदशा पर निर्भर करता है प यदि मनुष्य का स्वाभाव क्रूर है तो वह समाज में अनेक बुराइयाँ पैदा करेगा और उसमें संलिप्त भी होगा, जिससे समाज का नुकसान के साथ साथ प्रगति भी रुक जाएगी। इसीलिए साहित्य मनुष्य को एक अच्छा इन्सान बनाने के साथ उसके कार्यों को लोक कल्याण के रूप में प्रतिष्ठित करता है। परिणामतः मनुष्य प्राणी मात्र के प्रति करुनामय हो जाता है एवं लोक कल्याण हेतु समर्पित भी होता है प्यह दुस्तर कार्यसाहित्य लेखकों और आचार्यों को बड़े दायित्व और जिम्मेवारी के रूप में निभाना पड़ता है। जिसका सीधा सम्बन्ध मन की लोक मंगल की भावना से होता है, जिसकी कसौटी लोकमंगल के निकष से आंकी जाती है। जिस साहित्य में लोक मंगल का जितना सुन्दर भाव निहित होता है वह साहित्य उतना ही बड़ा साहित्य माना जाता है। यद्यपि कला कला के लिए का भी सिध्दांत है फिर भी कला मनुष्य के लिए ही सर्वोपरि है प्रस्तुत शोध में विभिन्न साहित्य के माध्यम से लोक मंगल की कसौटी पर काव्य की उपादेयता को मनुष्य के हित में देखने का प्रयास किया गया है।

मूल शब्दः लोकमंगल, साहित्य, व्यष्टि और समष्टि. साधनावस्था. सिध्धावस्था. समन्वय वादी

आचार्य शुक्ल ने काव्य के साथ लोक धर्म का घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित कर आधुनिक साहित्य चिंतन में एक नया अध्याय जोड़ दिया। इस स्थापना की मूल प्रेरणा उन्हें तुलसी के प्रमुख ग्रन्थ श्री राम चरित मानस से प्राप्त हुई।
लोक के दो अर्थ हैं –––जगत और जन समुदाय या समाज । आधुनिक युग में यह शब्द और भी ज्यादा व्यापक अर्थों का परिचायक है –––समाजवाद के प्रभाव से अब यह जन साधारण या उससे भी आगे सर्वहारा वर्ग का वाचक बन गया है १। यह निश्चित है कि शुक्ल जी और उनके प्रेरणा श्रोत गोस्वामी तुलसीदास का अभिप्रेत अर्थ यह नहीं था। शुक्ल जी ने तो अपने युग में बढ़ते हुए व्यक्तिवाद के विरोध में लोकवाद की प्रतिष्ठा की और अपने मत की पुष्टि में तुलसीदास को प्रमाण रूप में प्रस्तुत किया था। अब तक जो कुछ कहा गया उसमे गोस्वामी जी व्यक्तिवाद (इंडीविजुअलिस्म) के विरोध और लोकवाद (सोशलिज़्म) के समर्थक लगते हैं[२]। लेकिन लोकवाद या समाजवाद का प्रयोग शुक्ल जी ने व्यापक अर्थ में किया है –वर्त्तमान रूढ़ अर्थ में नहीं । उसका तो उन्होंने इसी प्रसंग में अत्यंत मुखर शब्दों में खंडन कियाकिया है। अतः लोक शब्द की परिधि में सभी वर्गों और वर्णो के लोग शामिल हैं। उन्होंने लिखा है–––'भक्ति का यह विकृत रूप जिस समय उत्तर भारत में अपना स्थान बना रहा था उसीसमय भक्तवर गोस्वामी जी का अवतार हुआ जिन्होंने वर्ण – धर्म, आश्रम –धर्म, कुलाचार वेद विहित कर्म क्षेत्र प्रतिपादित ज्ञान इत्यादि सबके साथ भक्ति का पुनः सामंजस्य स्थापित करके आर्य धर्म को छिन्न– भिन्न होने से बचा लिया [4]।
जनता की प्रवित्तियों का औसत निकालने पर धर्म का जो मान निर्धारित होता है, वही लोक धर्म है ४। श्लोक विहित आदर्शों की प्रतिष्ठा फिर से करने के लिए,भक्ति के सच्चे सामाजिक आधार फिर से खड़े करने के लिए उन्होंने राम चरित का आश्रय लिया जिसके बल से लोगों ने फिर धर्म के जीवन व्यापी स्वरुप का साक्षात्कार किया [५]।
गोस्वामी जी का आदर्श यही है जिसका निरूपण वेद पुराण स्मृति आदि में है अर्थात आश्रम धर्म की पूर्ण प्रतिष्ठा। संसार जैसा है वैसा मानकर उसके बीच में एक – एक कोने का स्पर्श करता हुआ जो धर्म निकलेगा वही लोक धर्म होगा ६।
डॉ नगेंद्र आचार्य शुक्ल के लोक धर्म विषयक मर्म को इस प्रकार निरूपित करते हैं –––

1. लोकधर्म उन गुणों और कर्तव्य –कर्मो का नाम हैं जिनके द्वारा लोकजीवन की रक्षा या व्यवस्था होती हैं ।
2. साधनावस्था चलता हैं।
3. उसमे प्रेम, दया, दाक्षिण्य, शील, श्रद्धा, उदारता आदि मधुर कोमल वृत्तियों का नहीं, क्रोध, घृणा, युयुत्सा आदि वृत्तियों के नैतिक रूपों का भी समावेश रहता हैं।
4. लोक धर्म में सामंजस्य बुद्धि का प्राधान्य रहता हैं। एक ओर जहाँ वह भक्ति, ज्ञान, कर्म के सामंजस्य पर बल देता हैं वहां दूसरी ओर वह विभिन्न प्रकृति तथा बौद्धिक अवं सामाजिक स्तर के व्यक्तियों के जीवन–विकास के लिए उचित व्यवस्था करता हैं।
5. लोक धर्म का लक्ष्य समष्टि का कल्याण और समन्वित विकास, व्यष्टि का कल्याण समष्टि के वृत्त के भीतर ही हो सकता हैं।
6. व्यक्तिगत साधना में जहाँ व्यक्ति चेतना का उत्कर्ष मुख्या रहता हैं, वहां लोक धर्म –जीवन के समन्वित विकास को लक्ष्य मानकर चलता हैं [7]।

शुक्ल जी लोकधर्म के प्रतिपादन का आधार तुलसी के आदर्श राम चरित मानस को मानते हैं। सूर के विषय में वह मुक्त रूप से यह स्वीकार करते हैं कि –––प्रेम नामक वृत्ति का जैसा विशद विवेचन सूर ने किया हैं वैसा अन्यत्र दुर्लभ हैं, सूर मानव ह्रदय का कोना –कोना झांक आये हैं ––उनके काव्य में ह्रदय की सूक्ष्मत अनुभूतियों का अपूर्व चित्रण मिलता हैं [८]। लेकिन सूर ने जीवन के एक पक्ष ––केवल मधुर पक्ष का ही चित्रण किया हैं। उनके काव्य में लोकजीवन का सर्वांग पूर्ण चित्रण नहीं मिलता जो तुलसी के काव्य का मौलिक वैशिष्ट्य हैं। इसीलिए शुक्ल जी स्पष्ट निर्णय हैं कि तुलसी हिंदी के सर्व श्रेष्ठ कवि हैं––एक प्रकार से आदर्श कवि हैं। शुक्ल जी ने तुलसी काव्य को इसलिए वरीयता दी हैं क्योकि उसमे विस्तार और गाम्भीर्य का पूर्ण

समन्वय हैं। आचार्य द्विवेदी जी भी इसी बात को स्वीकार करते हैं। हिंदी साहित्य कि भूमिका में लिखते हैं ––'उनका (तुलसी) सारा काव्य समन्वय की विराट चेष्टा हैं। राम चरित मानस शुरू से आखीर तक समन्वय का काव्य हैं। एक समन्वय वादी लोक नायक में समझौते की जो प्रवित्ति होती हैं, वह उनमे थी [६]।
लोकमंगल के लिए हित (लोकहित) लोकोपदेश (सत–असत तथा कर्तव्याकर्तव्य या शुभ– अशुभ की शिक्षा), शिवेत रक्षति ,चतुर्वर्ग या तिवर्ग की प्राप्ति आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है और आनंद के लिए प्रीति अंतश्चमत्कार, आह्लाद, सद्यः परिनिर्वृत्ति आदि का कुंतक तथा शिलर जैसे भारतीय एवं पाश्यात्य मनीषियों ने भी इसको स्वीकार किया है।
आचार्य शुक्ल यद्यपि लोक मंगल और आनंद, कर्म – सौंदर्य और भाव माधुर्य। आनंद की साधनावस्था और सिद्धावस्था दोने के सामंजस्य में ही कविकर्म की पूर्णता मानते हैं किन्तु उनका बल लोकमंगल पर ही है। लोकमंगल की यह कल्पना निरानंद नहीं है। कर्म के सौंदर्य या आनंद का आचार्य शुक्ल ने बार –बार उल्लेख किया है। यहाँ तक की लोककल्याण के प्रयत्नों की विफलता में भी वे एक प्रकार के आत्म संतोष की स्थिति मानते हैं। आनंद की सिद्धावस्था अथवा उपभोग पक्ष को वे भी यथावत स्वीकार करते है परन्तु उसे वे प्रकारांतर से निष्क्रिय आनंद मानते हैं। जबकि कर्म का आनंद आत्मा की ऊर्जा से मंडित होता है। पाश्चात्य साहित्य शास्त्र में सुन्दर के ललित, शोभन, उदात्त आदि कतिपय रूप का निर्वाचन किया गया है। इनमें से ललित के माधुर्य भाव का प्राधान्य रहता है। शोभन में, माधुर्य में औचित्य का योग हो जाता है और ऊर्जा से मंडित हो कर उदात्त रूप धारण कर लेता है। आचार्य शुक्ल ने काव्य में लोकमंगल की साधना और सिद्धावस्था, जीवन के प्रयत्न पक्ष और उपभोग पक्ष या कर्म –सौंदर्य या भाव –सौंदर्य की जिस सामंजस्य की चर्चा बार –बार की है उसकी परिणति भी इसी औदात्त कल्पना में मिल जाती है। जयदेव, बिहारी जैसे कवि भी अपनी कल्पना को भीतर ही रमण करने के कारन शृंगार से आगे नहीं जा सके हैं। वहीं भूषण जैसे कवि लोकमंगल की साधनावस्था के छत्रं की वजह से वीरभाव तक ही सिमट कर रह जाते हैं। किन्तु इन दोनों से भिन्न जिन महाकवियों की प्रतिभा लोकमंगल की साधनावस्था और सिद्धावस्था दोनों में पूर्ण सामंजस्य स्थापित कर लेती है वे उदात्त काव्य की सृष्टि करते हैं तथा उनके काव्यों में मानव ह्रदय की ऊर्जा और माधुर्य का समेकित रूप मिलता है–––ऐसे काव्य की पाश्चात्य काव्यशास्त्री लोंजाइनस ने महानआत्मा की प्रतिध्वनि कहा १३ ।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. डॉ नगेन्द्रः भारतीय समीक्षा और आचार्य शुक्ल की काव्य दृष्टि, पृष्ठ ७४
2. आचार्य रामचंद्र शुक्ल रूगोस्वामी तुलसीदास, पृष्ठ ४०
3. वही, पृष्ठ २३
4. वही, पृष्ठ २५
5. आचार्य रामचंद्र शुक्ल रूगोस्वामी तुलसीदास ,पृष्ठ २७
6. वही, पृष्ठ २४
7. डॉ नगेन्द्र रूभारतीय समीक्षा और आचार्य शुक्ल की काव्य दृष्टि, पृष्ठ ७५
8. आचार्य रामचंद्र शुक्ल– त्रिवेणी, पृष्ठ २२
9. हजारी प्रसाद द्विवेदीः हिंदी साहित्य की भूमिका, पृष्ठ १०४
10. आचार्य राम चंद्र शुक्लः रस मीमांसा, पृष्ठ ४७
11. वही, पृष्ठ २८
12. आचार्य रामचंद्र शुक्लः चिंतामणि, भाग –१ पृष्ठ २१६
13. वही, पृष्ठ २२१
14. डॉ नगेन्द्र रूभारतीय समीक्षा और आचार्य शुक्ल की काव्य दृष्टि ,पृष्ठ ७८